International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925(Online), Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 04(III), October - December, 2025, pp. 176-180

शब्दब्रह्म की शास्त्रीय विवेचना

डॉ. रेनू रानी शर्मा*

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल हरियाणा।

*Corresponding Author: renusharma1806@gmail.com

Citation: शर्मा, रेनू. (2025). शब्दब्रह्म की शास्त्रीय विवेचना. International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, 07(04(III)), 176–180. 10.62823/IJEMMASSS/7.4(III).8485

सार

ऋग्वेद के एक मन्त्र में शब्दब्रह्म का सुन्दर विवेचन है। वहाँ बताया गया है कि शब्दब्रह्म ही अविद्या के द्वारा अपने को विविधतापूर्ण सांसारिक पदार्थो के रूप में प्रकाशित करता है। वहाँ उसे महादेव कहा गया है। उन शब्द रूप महादेव को वृषभ भी कहा गया है। उस शब्द रूप वृषभ की परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप चार वाणियाँ, चार श्रृंडग हैं और चतुर्थ वाणी को मनुष्य बोलते हैं। उन महादेव के भूत, भविष्य, वर्तमान–ये तीनों काल तीन पद हैं। शब्द के नित्य और अनित्य (कार्य) रूप दो शिर हैं।

शब्दकोशः *ऋग्वेद, शब्दब्रह्म, नित्य, अनित्य, पश्यन्ती, मध्यमा।*

प्रस्तावना

सातों विभक्तियाँ सात हाथ हैं। हृदय, कण्ठ और शिर में, बंधा हुआ वह शब्दरूप वृषभ महादेव हैं जो मनुष्यों में प्रविष्ट है –

चत्वारि श्रृंडगः त्रयोडस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां अविवेश ।। ऋग्वेद 458/3 ।।

महर्षि पंतजलि एवं आधुनिक व्याख्याकार इस मन्त्र की व्याख्या वेदों की वाणी अथवा व्याकरण सम्मत वाणी के रूप में करते हैं। यह वाणी रूपी वृषभ के चार सींग चार प्रकार के शब्दों (संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग एवं निपात) का प्रतीकात्मक स्वरूप है। जिसकू तीन पैर तीन काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) को दर्शाते हैं। यह वाणी रूपी वृषभ दो प्रकार की भाषा रूपी सिर वाला है।

यह दो प्रकार की भाषा वैदिक एवं सामान्य अथवा लौकिक संस्कृत हैं। इस वाणी रूपी वृषभ के सात हाथ सात विभक्तियों को व्यक्त करते हैं। महोदेवों से तात्पर्य है कि यह व्याकरण सम्मत भाषा अपनी दिव्यता के साथ मनुष्यों की बुद्धि में प्रवेश करके समस्त मानवजाति को बौद्धिक स्तर पर लाभान्वित करने के साथ–साथ ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर रही है। शब्दब्रह्म वाणी रूपी वृषभ का निर्माता अभिव्यक्ता अभिव्यजित हो रहा है । यह मंत्र एक रूपक है जो ब्रहमांड, जीवन एवं ज्ञान के विभिन्न पक्षों को वृषभ के प्रतीकात्मक रूप में दिखाता है, वस्तुतः वृषभ दो सीगों वाले होते हैं परन्तु यहाँ दो की अपेक्षा चार सींगो वाले बैल (वृषभ) का वर्णन शब्दब्रह्म को दिव्यता पूर्वक अपने में समाहित करने वाले वेदों की (वैदिक ऋचाओं व मन्त्रों की) शक्ति का प्रतीकात्मक वर्णन है। इस वृषभ के तीन पाँव तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) में यज्ञ की निरन्तरता व शब्दब्रह्म की

* *Copyright © 2025 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

प्रासंगिकता को दर्शाते हैं। ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रन्थों में ऐसे तथ्य प्रचुरता से प्राप्त होते हैं जिनका कोई सीधा–सादा अर्थ न होकर प्रतीकात्मक रूप से ब्रहमांड के रहस्यों को अभिव्यक्त करते हैं। उपर्युक्त वृषभ का वर्णन करते हुए शब्दब्रह्म के रहस्य को वर्णित किया है कि किस प्रकार शब्दब्रह्म ब्रहमांड एवं सृष्टि में अन्तर्निहित है। अव्यक्त ईश्वर और व्यक्त जगत के मध्य दोनोंको जोड़ने वाली कड़ी शब्द ब्रहमा ही है, जिसका अनुभव प्राप्त करता है। जो अर्थ शिव स्वरूप दिव्य आनन्द को प्राप्त करता है। जो अर्थ शब्द से नहीं मिलता उसे सिर्फ कल्पना के आधार पर कल्पित करना ऋषि का कार्य नही है।

अनेक वैयाकरणों ने शब्द का एकान्तिक महत्व स्वीकार किया है। आचार्य भर्तृहरि की शब्द विषयक धारणा अपना पृथक महत्व रखती है। वे शब्द को ब्रह्म रूप में स्वीकार करते हैं यद्यपि इस विषय में इनसे पूर्व अनेक आचार्यो ने लिखा है किन्तु भर्तृहरि ने इस विषय पर अधिक वैज्ञानिकता व स्पष्टतापूर्वक विचार किया है 'वाक्यपदीय' के प्रथम श्लोक में ही भर्तृहरि ने शब्द तत्व को ब्रह्म कहा है।[1] '' जो ब्रह्म नित्य ब्रंहणशील है और जिसका आदि व निधन संभव नहीं है वह वस्तुतः शब्द ब्रहम ही है। उसकी संस्थिति या उसकी महत्ता में किसी प्रकार का ह्रास'' या अभाव आदि संभव नहीं है – वह अक्षर है । उसी शब्द तत्व का एक और सुदृढ़ पक्ष अर्थ का भाव है जिसके द्वारा अथवा जिससे उद्भूत होकर इस संसार की व्यावहारिक प्रक्रिया गतिमान रहती है।''[1]

इस श्लोक में ब्रह्म को शब्दतत्व के रूप में वर्णित किया गया है। ब्रह्म को 'अनादिनिधन' नादस्वरूप तथा अक्षर कहा गया है। वेदान्त के नियमानुसार ही समस्त वाग्व्यवहार को एवं उनके मूल में निहित रहस्य को समझने का प्रयास किया गया है। इस श्लोक में नादब्रह्म की विवर्तन शक्ति को सम्पूर्ण जगत की विलीनता का आधार भी स्वीकृत किया है। विवर्त से तात्पर्य प्रलय तक ही सीमित नहीं है वस्तुतः वेदान्त में संसार के उत्पत्ति –स्थिति –प्रलय रूपी समस्त प्रक्रियाओं का अन्तर्ग्रहण हो जाता है। वस्तुतः वेदान्त में संसार के उत्पत्ति – स्थिति – प्रलय रूपी समस्त प्रक्रियाओं का अन्तर्ग्रहण हो जाता है। वस्तुतः भर्तहरि का कथ्य विषय सृष्टिकर्ता अध्यात्म ब्रहम ही नहीं है अपितु वैयाकरण और भाषाविद् की दृष्टि से देखने वाले भर्तृहरि का कथ्य वह शब्दतत्व है जिसे वे अध्यात्मजगत के मूल आधार ब्रह्म के समकक्ष मानते हैं। ऐसी व्याख्या इसलिए की जा सकती है क्योंकि भर्तृहरि ने 'शब्द तत्व' का प्रयोग किया है 'शब्द' का नहीं अर्थात् शब्द व्यापार की जो निरन्तरता व एकसूत्रता का सार रूप तत्व है। ऐसे शब्द तत्व के विषय में कहा जा सकता है कि न उसकी उत्पत्ति ज्ञात है न अंत एवं वह नित्य ब्रंहणशील एवं अक्षर है तथा अभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण वही समस्त संसार की व्यवहार प्रक्रिया का केन्द्र व माध्यम है। भर्तृहरि के अनुसार शब्द तत्व की विभिन्न शक्तियाँ दिशा, साधन, काल व क्रिया आदि के रूप में अधिगम्य हैं। इन्हीं आधारों पर मूलतः 'शब्दतत्व' के रूप में वह ब्रंहणशील होते हुए भी विभिन्न आकारों या अभिधानों द्वारा विभिन्न रूप में विभक्त सा माना जाता हे वस्तुतः वह शब्दरूप तत्वतः एक ही है परन्तु दिक् कालादि शक्तियों के प्रभाव से उनसे उत्पन्न भावना भेद के कारण उसकी अलग –अलग प्रयोग अवस्थाओं को हम विविधतापूर्ण मान लेते हैं।[2] वेदान्त एवं शैवमार्ग का अनुसरण करते हुए भर्तृहरि का वास्तविक वर्ण्य विषय 'शब्द तत्व' है। शक्ति के विषय में भर्तृहरि अनेकत्र विभिन्न शक्तियों का उल्लेख करते हैं परन्तु अपने सम्पूर्ण विवेचन में वे आलंकारिकों द्वारा मान्य शब्दशक्ति की चर्चा नहीं करते हैं। उनके अनुसार कालरूपा शक्ति उस शब्दब्रह्म की निरन्तर चलने वाली समस्त संसार में व्याप्त कला है, उसको आधार मानकर ही जन्म, वृद्धि, क्षय व मरण आदि षड्विकार माने जाते हैं। उक्त विविध स्थितियाँ विविध भावभेदों को जन्म देती हैं। भर्तृहरि के अनुसार 'शब्दतत्व' जो कि ब्रहमरूप है वह एक और सर्वबीज है अर्थात् वह मूलतत्व के रूप में एक है तथा नये –नये शब्दरूपों की उत्पत्ति का मूलकारण है साथ ही वह भोक्ता, भोक्तव्य एवं भोग के रूप में या इन स्थितियों के द्वारा अनेकरूपता को प्राप्त करता है।[3] शब्दब्रह्म के विषय में अपने ज्ञान को अभिव्यक्त करते हुए वे आगे कहते हैं कि उस ब्रहम अथवा शब्दब्रह्म की प्राप्ति का उपाय और उसकी अनुकृति 'वेद' है। 'वेद' निश्चय ही 'एक' है क्योंकि 'वेद' का वर्ण्य विषय अथवा लक्ष्य 'एक' ही है परन्तु 'एक' होते हुए भी उस वेद को महर्षियों ने इस प्रकार से वर्गीकृत और विभक्त सा वर्णित किया है जैसे उसका लक्ष्य अथवा उसमें वर्णित विषय 'एक' न होकर 'अनेक' हों। यहाँ 'वेद' के चतुर्धा विभाग को अन्यथा सिद्ध करना लेखक को अभिप्रेत नहीं है। अपितु उस

सम्पूर्ण विभाजन के पीछे छिपी एकता जो ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित कराती है अभिप्रेत है। भर्तृहरि यह लक्ष्य ज्ञानराशि के रूप में ही स्वीकार करते हैं एवं ज्ञान सदा एक और अविच्छिन्न ही होता है। एकत्व और द्वैत का अर्थ भी इस प्रसड.ग से अवगत हो जाना चाहिये। इनसे केवल अध्यात्म का ही ब्रह्मभाव अभिप्रेत नही है। व्याकरण की दृष्टि से भर्तृहरि 'शब्द' की नित्यकार्यता एवं अर्थ से उसकी भिन्नता – अभिन्नतापरक विचार को इंगित करते हैं। प्रणव को शब्दब्रह्म व समस्त ज्ञानराशि का मूल आधार सिद्ध करते हुए आचार्य भर्तृहरि कहते है कि ''वादों या प्रवादों की अनेकता होने पर या प्रत्यक्ष रूप से विरोध दिखाई देने पर भी उन सबका विषय 'प्रणव' अथवा 'शब्दब्रह्म' के रूप में समानरूप से रहता है।''[4] यह 'प्रणव' ही 'शब्दब्रह्म' रूप में समस्त विद्या का विषय है। यदि हम अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो ब्रह्म की उपलब्धिभूता इस 'शब्द ब्रह्म' 'प्रणव' विद्या की शुद्धता अनिवार्य है।

श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवे अध्याय के अन्तर्गत ऊँ+तत्+सत् यह ब्रह्म का तीन प्रकार का निर्देश माना गया है। प्राचीन काल में ब्रह्म (प्रणव अर्थात ऊँकार रूपी शब्द ब्रह्म) से ही वेद, ब्राहमण ग्रन्थ तथा यज्ञ निर्मित हुए। इसलिए ब्रह्मवादी लोगों की शास्त्रों के विधान के अन्तर्गत बताई गयी यज्ञ, तप एवं दान सम्बन्धी क्रियाऐं सदैव ऊँ का उच्चारण करके प्रारंभ की जाती हैं।[5] 'तत्' – अर्थात् वही ब्रह्म सब कुछ है इस प्रकार की हार्दिक भावना के साथ फलासक्ति त्यागर्पूवक यज्ञ–दान–तप आदि क्रियाऐं मुमुक्षु के द्वारा की जानी चाहिए। 'तत्' अर्थात् इन प्रयोजनों से किया गया कर्म भी 'सत्' कहलाता है। इनमें से ''ऊँ'' एक गूढ़ संकेत है अतः अलौकिक, वैदिक कर्म में ईश्वर का स्वरूप अभिव्यक्त करने के लिए 'ऊँ' शब्दब्रह्म को उच्चरित किया जाता है। यह शब्द ऐसे सत्कर्मो का पर्याय है जो कर्म नीति विरूद्ध नहीं होते या जो इच्छाऐं धर्म में बाधक नहीं होतीं।

केनोपनिषद में ऊँकार का महत्व वर्णित करने वाली एक आख्यापिका कही गई है –

एक बार देवासुर संग्राम में ब्रह्म ने देवताओं को विजय प्राप्त करा दी। तब देवता गर्वयुक्त होकर कहने लगे कि ''यह हमारी विजय है, यह हमारी महिमा है।''उनकी यह गर्वोक्ति ब्रह्म तक पहुंची तो वह एक तेजस्वी यक्ष रूप धारण कर देवताओं के समक्ष प्रगट हुए एवं अग्निदेव से पूछा ' तू कौन है ?'' तो अग्निदेव ने कहा ''मैं विश्वविख्यात अग्नि हूँ'' ''तुझमें कौन सी शक्ति है ?'' ''मैं पृथ्वी पर स्थित हर वस्तु को जला सकता हूँ'' ''तब यह तिनका जला कर दिखा'' यह कहकर एक घास का तिनका उसके समक्ष डाल दिया लेकिन अपनी समस्त शक्ति लगाने पर भी अग्नि उस तिनके को नहीं जला सका और वापस लौट गया। तत्पश्चात् वायुदेवता से ब्रह्म द्वारा पूछने पर कि वह कौन है और क्या शक्ति धारण करते हैं तो उन्होंने बताया कि वह वायु है और पृथ्वी पर उपस्थित प्रत्येक वस्तु को उड़ा सकते हैं तो ब्रहमदेव वही तिनका वायुदेव के समक्ष रख देते है और वायुदेव अपनी समस्त शक्ति लगाकर भी उस तिनके को नही उड़ा पाते और लौट जाते हैं। अंत में देवताओं ने समृद्ध इन्द्रदेव को आह्वान पूर्वक प्रार्थना की। वह ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित हुए तो ब्रह्मदेव अन्तर्धान हो गये व उनके स्थान पर 'उमा देवी' जो कि हिमवान् की पुत्री थीं प्रकट हुयीं तथा कहा कि जिसकी शक्ति से तुम्हें यह विजय प्राप्त होती है, वह यही साक्षात ब्रह्मा है।''[6] उमा देवी के ये शब्द कान मे पड़ते ही उनकी बुद्धि प्रकाशित हो गयी। तेज से आलोकित होने वाली ब्रहमा की शक्ति स्वरूपा को विद्या की देवी कहा है। लेकिन इस ब्रह्मविद्या को उपनिषद में 'उमा' क्यों कहा। ऊँकार के व्युत्पत्ति परक अर्थ को समझने का प्रयास करेंगे तो स्पष्ट होगा कि ऊँ – अ+उ+म इन तीन अक्षरों को समन्वित करने से बना है। इन्हीं अक्षरो को यदि भिन्न क्रम से रखे और स्त्रीलिंग शब्द बनाऐं तो 'उमा' शब्द बनता है। इस प्रकार उमा शब्द से ऊँकार और पर्याय से ब्रह्मविद्या ही समझा जाना चाहिए। ऊँकार के लिए ही द्वितीय शब्द 'प्रणव' है। स्तुत्यर्थक 'नु' धातु को 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'प्रणव' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। जिसका अक्षरार्थ 'उत्तम स्तुति है। 'आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिं' अर्थात आत्मा रूपी नीचे की लकड़ी और प्रणव या ऊँकार रूपी ऊपर की लकड़ी के घर्षण से ज्ञानाग्नि उत्पन्न की जाय। इस प्रकार ऊँ ही वह शब्द है जो ब्रह्मा तक ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। क्योंकि 'अक्षर' शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ 'अविनाशी' होता है अतः वह परब्रह्मा का प्रतीक हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता के ''ऊँमित्येकाक्षरं ब्रह्म''[7] वचन का यही अर्थ है क्योकि यह अक्षर न ह्रस्व है न दीर्घ है ऐसा आलंकारिकों का मत

है। जिसे यह अक्षर अज्ञात है उसने वेदादि कण्ठस्थ कर लिए हों या वैयाकरणज्ञ हो तो भी उपनिषदों के कथनानुसार उसे अक्षरज्ञ भी नही माना जा सकता।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में दीर्घतमस् ऋषि का कथन है[8] जिसे श्वेताश्वेतर उपनिषद में भी सम्मिलित किया गया है जिसका भाव है – जिस महान अक्षर पर समस्त ऋचाओं के राजभवन को स्थापित किया गया है वह अक्षर जिसे नही ज्ञात वह ऋग्वेद को लेकर क्या करेगा ?

वैशेषिक दर्शन में आकाश तत्व का गुण 'शब्द' को बताया गया है। आकाश नित्य एवं अविनाशी है अतः उसके गुण 'शब्द' को भी नित्य एवं अविनाशी मानना चाहिये। वैज्ञानिक दृष्टि से भी शब्द की सत्ता कभी नष्ट नहीं होती क्योंकि वह तरंगों के साथ धीरे धीरे फैलता जाता है। यास्काचार्य ने कदाचित् इसी भावना से शब्द को सार्वत्रिक , आवृत्तिशील एवं व्यापक रूप में स्वीकार किया है।[9] एक ही शब्द किस प्रकार नये–नये रूप ग्रहण करके भी अपने मूल से विचलित नहीं होता, प्रत्युत केन्द्रस्थ रहता है। इस सत्य की ओर सर्वप्रथम यास्क ने ही संकेत किया था (यद्यपि आचार्य पतंजलि ने 'महान देवः' की व्याख्या व्याकरणपरक की किन्तु वे उसमें भाषा वैज्ञानिक दृष्टि न ला सके) यास्क ने शब्द को अर्थनित्य कहा।[10] जबकि पतंजलि ने शब्द की परिभाषा ही कर दी– जिससे किसी पदार्थ या अर्थ का निश्चय हो वह शब्द है। उक्त दोनों आचार्यो ने शब्द को अर्थनित्य रूप में ही स्वीकार किया है।

पंतजलि द्वारा प्रणीत योगदर्शन ने जिस नाद की धारणा को पुष्ट किया है वही कालान्तर में नाद ब्रह्मा के रूप में प्रसिद्ध हुआ। वेदान्त ने उसे शुद्ध ब्रह्म कहा तो शैव दर्शन ने उसे नाद रूप में ही स्वीकार किया। आचार्य भर्तृहरि की शब्दब्रह्म विषयक धारणा पर उक्त सभी धारणाओं का प्रभाव पड़ा है।

शब्द का स्वरूप विवेचन करते हुए भर्तृहरि ने सर्वप्रथम उसे अनादि निधन कहा है।[11] 'शब्दोंनित्यः' या 'अर्थनित्यः' कहने वालों ने शब्द की नित्यता को जिस आधार पर सिद्ध किया है 'अनादि निधन' उसकी दूसरी व्याख्या है। यदि हम वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें, तो भी आकाश तत्व अविनश्वर और अनादि ही सिद्ध होता है। अतः उसमें होने वाली गुण रूप ध्वनि (शब्द) भी नित्य ही होगी। शब्द प्रयोग का न तो आदि जाना जा सकता है और न ही अन्त निश्चित होता है यह एक समय में नष्टप्रायः होकर भी पुनः प्रयोग में आ सकता है। भर्तृहरि शब्द तत्व को बताते हुए कहते हैं ''शब्द आ सकते हैं, रह सकते हैं, अप्रयुक्त होकर अदृश्य रह सकते हैं किन्तु शब्दतत्व तो सृष्टि के आदि से ही चलता आया है और चलता रहेगा। यह शब्द और शब्दतत्व नित्य बंहणशील है''[12] ध्वनियाँ उठकर मिट जाती है। शब्द दीर्घ हो या ह्रस्व उसका स्फोट् उसी क्षण नष्ट हो जाता है। फिर भी उसमें एक विस्तार है जो कम या अधिक रूप में निरन्तर चलता रहता है। यह शब्द तत्व केवल नाम से ही ब्रह्म नहीं है प्रत्युत अध्यात्म के ब्रह्मा की भाँति वह भी जगत की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। ब्रह्म से ही यह संसार स्पंदन प्रक्रिया द्वारा जन्म लेता है व अन्ततः उसी में विलीन हो जाता है उसी प्रकार से शब्दब्रह्मा के विवर्त से ही 'शब्द राशि' उत्पन्न होती है जो विश्व के किसी भी प्रकार के व्यवहार का माध्यम बनती है। संसार का पारस्परिक व्यवहार शब्द तत्व से ही आरम्भ होता है इस प्रकार शब्दब्रह्मा ही सब विद्याओं का मूल आधार है। भिन्न –भिन्न विद्याओं के भेद अलग –अलग हो सकते है परन्तु उन सबके प्रचार –प्रसार एवं संवर्धन का माध्यम शब्द सिद्धि ही है।[13] ऋषियों के समस्त मंगल स्मरण ऊँकार की गूढ संज्ञा में समाये हुए हैं। विश्व को संबोधित करते हुए ऋषियों का यह गूढ़ संकेत है, परब्रह्मा की यह वाड्मयी मूर्ति है इसकी उपासना हमारा कर्तव्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।। वाक्यपदीय –1/1 ।।
2. एकमेव यदाम्नातं भिन्न शक्तिव्यपाश्रयात्।। अपृक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथकत्वेनेव वर्तते ।। वाक्यपदीय 1/2 ।।
3. एकस्य सर्वबीजस्व यस्य चेयमनेकधा। भोक्तृभोक्तव्यरूपेण भोगरूपेण च स्थितिः।। वाक्यपदीय 1/4 ।।
4. सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा। युक्ता प्रणवरूपेण सर्ववाद विरोधिना ।। वाक्यपदीय 1/9 ।।

5. ऊँ तत्सदिति निर्देशो ब्रहणस्त्रिविधः स्मृतः। ब्रह्मणस्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।। भगवगीता –17/23–28 ।।
6. त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं । महिमेति ..... केनोपनिषद 3/1–12
7. श्रीमद्भवद्गीता – 8 /13
8. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस् तन् न वेद किमृचा करिष्यति, य इत् तद् विदुस इमे समासते ।। ऋग्वेद – 1/164/39 ।।
9. व्याप्तिमत्वाक्तु शब्दस्य – निघण्टु 1/2/4।।
10. 10. अर्थनित्यः परीक्षेत् – निघण्ट 2/1/3
11. अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम् । विवर्त्तेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ।। वाक्यपदीय 1/1।।
12. परस्तु शब्द सन्तानः प्रत्रयापत्रयात्मक । वाक्यपदीय 1/103।।
13. विद्यातुस्तत्स लोकानामगडोपाडग निबन्धना। विद्याभेदः प्रतायन्ते ज्ञानसंस्कार हेतवः।। वाक्यपदीय 1.10 ।।
14. ऋग्वेद संहिता – सायणभाष्य – वैदिक संशोधन मण्डल, पूना
15. वाक्यपदीयम, भर्तृहरि, व्याख्या – महेशचन्द्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया
16. केनोपनिषद, गोविन्दभवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर
17. ईशावास्योपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर
18. निघण्टु, यास्काचार्य, चौखम्बा ओरिएन्टालिया

❑❑❑